अप्रचलित राग

प्रचलित तथा अप्रचलित रागों को पेश करना , रागरूपों की परिकल्पना में आई हुईं उत्क्रन्तियों को लेकर सोचना, या कतिपय राग क्यूँ अप्रचलित हुए और काफी सारे क्यूँ सदेह साबित प्रचलन में हैं इसकी मीमांसा करना मैं अौचित्यपूर्ण समझता हूँ |

अव्वल तो शतकों से चलते आ रहे रागरूपों की ज़रुरत क्यों आन पड़ी होगी, उन की निर्माण प्रक्रिया क्या रही होगी तथा किन्होंने और क्यों इन्हें प्रमाणित करने की चेष्टाएं कीं, इस इतिहास में अवगाहना होनी चाहिए | इसही नीव पर आगे जाकर कुछ तर्क स्थापित हो सकते हैं | इन बातों को लेकर संक्षेप में मेरे कुछ अवलोकन, कुछ आंकलन मैं पाठकगणों के सम्मुख रखना चाहूंगा |

गुरुवर कुमार गंधर्व का शिष्य होने से मुझे लोकधुनें और शास्त्रीय संगीत की परस्पर निर्भरता का अभ्यास करने का मौका मिला। फलस्वरूप रागसंगीत को देखने जो एक नजरिया मुझे अनुभूत हुआ उसे मैं विषद कर रहा हूं।

लोकधुनों को सुनने से यह स्पष्ट हो जाता है की इनमें गिने चुने स्वरों का उपयोग किया गया है | पूर्वांग उत्तरंग की बात तो दूर की है, इन स्वरों की व्याप्ति सम्पूर्ण सप्तक को भी नहीं छू पाती है |

संभाव्य सांगीतिक आशय का सशक्त बीज नज़र तो आता है परन्तु उस बीज के सम्पूर्ण सांगीतिक विकसन की यहाँ गुंजाइश नहीं है | इन हालात में सूनी हुई लोकधुन का षड्ज या आधारस्वर निश्चित करना, उस धुन में स्थित स्वरों के आपसी रिश्तों का ख़याल रखते हुए व रचना का मूल आकार्तत्व कायम रखते हुए सम्पूर्ण सप्तक में उसका चलन तय करना और परिणामस्वरूप लोकधुन की पुनरुक्ति से छुटकारा पा लेना याने ही लोकधुन को परिष्कृत करना, राग में परिवर्तित करना, अभिजात करना |

जो विचारधारा मैं अपना रहा हूँ, वह इस प्रकार है |

ख्यालगायन में राग के धुन की आवृत्ति, उसका दोहराना होता रहता है | उस धुन के भीतर शास्त्र रचते हुए उसे सम्पूर्ण सप्तक प्रदान किया जाता है और ताल के आवर्तन बांधे जाते हैं | इस धुन को central theme, anchor अथवा लंगर भी कहा जा सकता है |

यहाँ बड़े आग्रह से कहना चाहूंगा के लोकधुन राग में परिवर्तित होने से नष्ट नहीं होती, वह काल-बाह्य या गैर-ज़रूरी वस्तु नहीं बन जाती | राग की बढ़त लोकधुन का लंगर पकड़ कर होनी चाहिए, लोकधुन का आवृत्तिमूल्य भी उसमे होना चाहिए और धुन को परिष्कृत करके बने रागरूप में निहित शास्त्रविस्तार भी होना चाहिए | इन बातों का मेल व संतुलन साधने में ही कला का नितनूतन आविष्कार होता रहता है और राग प्रचलन में रहने का या न रह पाने का कारण भी मिलता है |

यहाँ कहना होगा की जिस राग की लोकधुन नहीं मिलती वहां धुन की कल्पना करके उसके भीतर शास्त्र रचा जाता है, फिर आप उसे मुखड़ा कहिये, पकड़, central theme, anchor, लंगर कहिये |

अभी मैंने धुन के आवृत्तिमूल्य की बात की थी, उसकी वजह यह है के हम धुन को, मुखड़े को दोहराते हैं, आवृत्ति करते हैं और बंदिश के सुप्त संकेतों को उजागर करते रहते हैं | We repeat and improvise. इस क्रिया के लिए हमें प्रोत्साहित करती है उत्तर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की तालक्रिया जो अपने आप में बेमिसाल है |

धुन को प्राप्त सप्तक तथा खाली भरी युक्त ताल के ठेके इन भारतीय ख्यालसंगीत को प्राप्त दो वरदानों के आधार पर हम अनुमान लगा सकते हैं के जिन रागों के अस्वाभाविक स्वराकृतियों के कारणवश उनकी धुन नहीं बन सकती, या गायक बना नहीं सकते, वे राग अप्रचलित हो जाते हैं |

जब गायक ही उपज अंग से, अपने अंदाज़ से रागरूप विकसित करने की कला में अवगत नहीं हो पाता तो वह रागरूप का एक निश्चित, अडिग ढांचा अपना के रट लेता है और उसे प्रमाणित रागरूप समझता है |

इतिहास पर गौर करने से यह सांत्वना मिल जाती है की राग कल्पना में वह गुण है जो किसी न किसी कलाकार से पुनरावलोकन के लिए स्वयं के प्रति आकर्षित करती है | पुनरावलोकन कर कलाकार फिर राग को पुनर्जीवित करता है, नया शारीर देता है, नए कपडे पहना कर सजाता है और राग गतजन्म का पुण्य संजो कर उत्पत्ति - लय का चक्र बन जाता है और कलाकार इन चक्रों का सारथी |

राग की बढ़त में उपज अंग का अनुसरण करने के फलस्वरूप तिरोभाव निर्माण होते हैं | विशिष्ट तिरोभाव को निश्चित करने से रागों के प्रकार बनते हैं | (मिसाल की तौर पर कानडा या नट के प्रकार)

राग अप्रचलित क्यूँ होते हैं ? इसके कई उत्तर हैं :

१) जब गायक के गले राग गल नहीं पाता, उस राग की धुन नहीं बनती, फलस्वरूप स्वरवाक्यों की आवृत्ति नहीं बन पाती, तब रागप्रवाह अटक जाता है और राग अप्रचलित हों जाता है | (उदा: नंद, मीरा मल्हार, बडहंस सारंग) | इसीलिए दक्षिणात्य संगीत पद्धति के ७२ मेलकर्ता थाटों से बने हुए हजारों रागों में से, जिनसे उत्तर हिन्दुस्तानी मिजाज़ की धुन बन सके ऐसे ही रगों को उत्तर हिन्दुस्तानी संगीतकारों ने अपनाया, जैसे की जनसम्मोहिनी, चारुकेशी, हंसध्वनी, आभोगी इत्यादि |

२) शास्त्रनियमों से प्रमाणित स्वरावालियाँ ही गायक जब गाता है, और इन स्वरावालियों से चिपके हुए, तिरोभाव संजोए हुए कला के गूढ़रम्य प्रदेशों में कलाकार संचार नहीं कर पाता, तो राग अप्रचलित बन जाते हैं | राग का कंकाल नज़र आता है, रूप नहीं | अक्सर यह कठिन और पेचीदा रागों को लेकर होता है | इसका कारण है उस राग के प्रति आवश्यक संस्कार या सोच का कलाकार में अभाव | यह राग प्रचार में तब ही आ सकते हैं जब इनकी बढ़त के लिए आवश्यक सोच-विचार का प्रचार हों | ऐसे अप्रचलित रागों के बारे में कहना चाहिए की :

अब के हम बिछड़े तो शायद कभी महफ़िल में मिलें
जैसे सूखे हुए राग किताबों में मिलें |

जन्मसिद्ध अौर कलासिद्ध
यह बात ख्यालसंगीत के तालों पर भी लागू है | जिन तालों के आवृत्ति में खाली-भरीयुक्त स्वाभाविक छंद नहीं बनते, वे ताल गाते समय गायक के मन में सम पर आने के पहले निर्माण करते हैं द्वंद्व, वह नहीं रह पाता स्वच्छंद और उसकी उपज प्रक्रिया पड़ जाती है बंद | ऐसे ताल अप्रचलित हो जाते हैं |

मेरे गुरूजी कहते थे के जो प्रचार में हैं, वे ताल भी पूरी तरह से गाये नहीं गए हैं | याचे स्पष्टीकरण देणे |

ताज्जुब की बात यह है की नवीनता के नाम पर नए राग प्रचार में आने से भूप, दुर्गा, भैरव जैसे राग महफ़िलों में बहुत कम सुनने को आते हैं और अप्रचलित बन जाते हैं | कानडा, नट, बिलावल के प्रकार ज्यादा सुनाई देते हैं, पर महज़ कानडा, छायानट या अल्हैय्या बिलावल अप्रचलित बन बैठे हैं |

हर कलाजीवी की यह विशेषता है की वह सादगी से शीघ्र ही उकता जाकर पेचीदगी, व्यामिश्रता की तलब करता है और गायन में पेचीदगी की अति हो जाने से फिर सादगी से पेश किये हुए संगीत को उपजाऊ मानता है | इसीलिए सरल, सादे रागरूपों जितना कठिन और अप्रचलित रागों का अभ्यास आवश्यक है | अर्थात अप्रचलित रागों के विकसन के लिए आवश्यक विचार प्रक्रिया का अध्ययन होना चाहिए | मैंने एक ध्वनीसंग्रहालय के निर्माण करने हेतु कंठसंगीत के कई मूर्धन्य कलाकारों का recording किया है | उस अनुभव के आधार पर मैं कहना चाहोंगा की रागव्यवस्था ऐसी चीज़ है जो हर कलाकार अपने लिए पुनरायोजित, पुनर्प्रस्थापित करता है | यह उसका जन्मसिद्ध अौर कलासिद्ध हक बनता हौ ।

सत्यशील देशपांडे
छंदोवती, ६८ मित्रमंडळ कॉलोनी,
पुणे ४११००९
भ्रमणध्वनी: ९८२०३ २२४५२